| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 3, Issue 4, April 2016 |

गांधीवादी समाजवाद

Dr.Deepak Sharma

Associate Professor, SCRS Government College, Sawai Madhopur, Rajasthan, India

सार

गांधीवादी समाजवाद मुख्य रूप से गांधी की लिखी किताब हिंद स्वराज पर केंद्रित है। राजनीतिक और आर्थिक शक्ति का विकेंद्रीकरण, प्रौद्योगिकी के आधुनिकीकरण और बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण की ओर परंपरागत रूप से अनिच्छा, और साथ ही स्वरोजगार और आत्मनिर्भरता पर ज़ोर देना गांधीवादी समाजवाद की प्रमुख विशेषताएं हैं।

परिचय

गांधीवादी समाजवाद महात्मा गांधी के सिद्धांतों की राष्ट्रवादी व्याख्या पर आधारित समाजवाद की शाखा है। गांधीवादी समाजवाद मुख्य रूप से गांधी की लिखी किताब हिंद स्वराज पर केंद्रित है।

राजनीतिक और आर्थिक शक्ति का विकेंद्रीकरण, प्रौद्योगिकी के आधुनिकीकरण और बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण की ओर परंपरागत रूप से अनिच्छा, और साथ ही स्वरोजगार और आत्मनिर्भरता पर ज़ोर देना गांधीवादी समाजवाद की प्रमुख विशेषताएं हैं।

भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) के नेता अटल बिहारी वाजपेयी, और पार्टी के कई अन्य नेताओं ने गांधीवादी समाजवाद को पार्टी के लिए एक अवधारणा के रूप में स्वीकार किया था। [1][2]

गांधीवादी समाजवाद की विचारधारा गांधी के स्वराज और मेरे सपनों का भारत नामक कार्य में निहित है, जिसमें उन्होंने भारतीय समाज का वर्णन किया है, जिसमें कोई अमीर या गरीब नहीं है, कोई वर्ग संघर्ष नहीं है, जहां संसाधनों का समान वितरण है और आत्मनिर्भर है। बिना किसी शोषण और हिंसा वाली अर्थव्यवस्था। [3] इस प्रकार, गांधीवादी समाजवाद पश्चिमी समाजवाद से भिन्न था क्योंकि पश्चिमी समाजवाद भौतिक प्रगति में विश्वास करता था जबकि गांधी हर किसी को भौतिक रूप से समान मानते थे। [4] जैसा कि जवाहर लाल नेहरू ने अपनी जीवनी में कहा है, "उन्हें समाजवाद और विशेषकर मार्क्सवाद पर भी संदेह है, हिंसा से उनके जुड़ाव के कारण।" उनका मानना था कि समाजवाद की उनकी शैली अहिंसा में उनके दृढ़ विश्वासों से आई है, न कि किसी किताब से अपनाई गई मान्यताओं से। [5] कई विशेषज्ञों ने देखा कि, समाजवाद के अन्य विद्यालयों के समान, गांधी की शैली समाजवाद की अवधारणा नैतिक विचारों का परिणाम थी, लेकिन पश्चिमी समाजवाद द्वारा बताई गई वर्ग-चेतना से इसका कोई लेना-देना नहीं था। [6] गांधी के समाजवाद का एक धार्मिक पहलू भी था। गांधी के समाजवादी दर्शन को समझने के लिए, रोमेन रोलैंड के रूप मेंदेखा; "यह महसूस किया जाना चाहिए कि उनका सिद्धांत दो अलग-अलग मंजिलों या ग्रेडों से बनी एक विशाल इमारत की तरह है। नीचे ठोस आधार, धर्म की मूल नींव है। इस विशाल और अटल नींव पर राजनीतिक और सामाजिक अभियान आधारित है।" [7] गांधीवादी समाजवाद की आर्थिक नीतियों के प्रमुख पहलू नैतिकता पर आधारित हैं। गांधीजी के अनुसार: "जो अर्थशास्त्र किसी मनुष्य या राष्ट्र के नैतिक कल्याण को नुकसान पहुँचाता है वह अनैतिक है और इसलिए पापपूर्ण है"। इसलिए, गांधीवादी समाजवाद सभी के लिए समानता को बढ़ावा देकर आर्थिक सामाजिक न्याय की नींव रखता है। [8] इस विचारधारा से विकसित होकर, गांधीवादी समाजवाद के आर्थिक घटक पूर्ण आर्थिक स्वतंत्रता से उत्पन्न स्वराज के आसपास केंद्रित हैं। यह आत्मनिर्भरता और आत्म-निर्भरता के माध्यम से हासिल किया जाता है, जहां, हर किसी को उसके श्रम का उचित हिस्सा मिलता है। इसलिए, गांधीवादी समाजवाद आर्थिक वर्गों के बिना एक समाज की वकालत करता है, जिसे गांधी ने सर्वोदय कहा था । [9] [10]इस अवधारणा का एक उदाहरण भारत में पंचायत राज के कार्यान्वयन में देखा जा सकता है । [11] 1938 में, स्वतंत्र भारत के बाद के लिए एक आर्थिक योजना के निर्माण के दौरान, यह ध्यान दिया गया कि लोकतांत्रिक भारत के तहत योजना न केवल विभिन्न समाजवादी , पूंजीवादी , या की नकल करके जीवन स्तर को ऊपर उठाने पर आधारित होनी चाहिए। फासीवादी राष्ट्र की योजना, लेकिन यह भारतीय धरती में अपनी जड़ों और भारत की समस्याओं पर केंद्रित होनी चाहिए। [12]

गाँधीवाद के बुनियादी तत्वों में से सत्य सर्वोपरि है;। वे मानते थे कि सत्य ही किसी भी राजनैतिक संस्था, सामाजिक संस्थान इत्यादि की धुरी होनी चाहिए। वे अपने किसी भी राजनैतिक निर्णय को लेने से पहले सच्चाई के सिद्धांतो का पालन अवश्य करते थे।
गाँधी जी का कहना था “मेरे पास दुनियावालों को सिखाने के लिए कुछ भी नया नहीं है। सत्य एवं अहिंसा तो दुनिया में उतने ही पुराने हैं जितने हमारे पर्वत हैं।”

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 3, Issue 4, April 2016 |

सत्य, अहिंसा, मानवीय स्वतंत्रता, समानता एवं न्याय पर उनकी निष्ठा को उनकी निजी जिंदगी के उदाहरणों से बखूबी समझा जा सकता है।

कहा जाता है कि सत्य की व्याख्या अक्सर वस्तुनिष्ठ नहीं होती। गाँधीवाद के अनुसार सत्य के पालन को अक्षरशः नहीं बल्कि आत्मिक सत्य को मानने की सलाह दी गई है। यदि कोई ईमानदारीपूर्वक मानता है कि अहिंसा आवश्यक है तो उसे सत्य की रक्षा के रूप में भी इसे स्वीकार करना चाहिए। जब गाँधी जी प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान स्वदेश लौटे थे तो उन्होंने कहा था कि वे शायद युद्ध में ब्रिटिशों की ओर से भाग लेने में कोई बुराई नहीं मानते। गाँधी जी के अनुसार ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा होते हुए भारतीयों के लिए समान अधिकार की माँग करना और साम्राज्य की सुरक्षा में अपनी भागीदारी न निभाना उचित नहीं होता। वहीं दूसरी तरफ द्वतीय विश्वयुद्ध के समय जापान द्वारा भारत की सीमा के निकट पहुँच जाने पर गाँधी जी ने युद्ध में भाग लेने को उचित नहीं माना बल्कि वहाँ अहिंसा का सहारा लेने की वकालत की है।
विचार-विमर्श

अहिंसा
अहिंसा का सामान्य अर्थ है 'हिंसा न करना'। इसका व्यापक अर्थ है - किसी भी प्राणी को तन, मन, कर्म, वचन और वाणी से कोई नुकसान न पहुँचाना। मन में भी किसी का अहित न सोचना, किसी को कटुवाणी आदि के द्वारा भी पीड़ा न देना तथा कर्म से भी किसी भी अवस्था में, किसी भी प्राणी का कोई नुकसान न करना।

ब्रम्हचर्य
खादी
उपवास व्यक्ति के अनुसार ही उत्तपन्न होता है|उपवास व्यक्ति मे शारीरिक अंगो मे तन्दुरस्ती लाता है|यह अनुकुल परिस्थितियो में करना लाभदायक होता हैं|
धर्म
गाँधीजी के अनुसार धर्म और राजनीति को अलग नही किया जा सकता है क्योंकि धर्म मनुष्य को सदाचारी बनने के लिए प्रेरित करता है । स्वधर्म सबका अपना अपना होता है पर धर्म मनुष्य को नैतिक बनाता है । सत्य बोलना, चोरी नहीं करना, परदु:खकातरता,दूसरों की सहायता करना आदी यही सभी धर्म सिखाते हैं । इन मूल्यों को अपनाने से ही राजनीति सेवा भाव से की जा सकेगी । गाँधीजी आडम्बर को धर्म नही मानते और जोर देकर कहते हैं कि मन्दिर मे बैठे भगवान मेरे राम नही है । स्वामी विवेकानंदजी के दरिद्र नारायण की संकल्पना को अपनाते हुए मानव सेवा को ही वो सच्चा धर्म मानते हैं । वास्तव मे उनका विश्वास है कि प्रत्येक प्राणी इश्वर की सन्तान हैं और ये सत्य है; सत्य ही ईश्वर है ।सैद्धांतिक रूप से गाँधीजी भारत के विभाजन के खिलाफ रहे क्योंकि इससे उनके धार्मिक एकता की भावना को चोट पहुँचती थी[1] उन्होंने भारत के विभाजन के बारे में ६ अक्टूबर १९४६ को अपने पत्र हरिजन में लिखा था:
[पाकिस्तान की माँग] जैसा कि मुस्लीम लीग द्वारा रखी गई है पूर्ण रूप से गैर-इस्लामी है एवं मुझे इसे पापपूर्ण कहते हुए भी कोई संकोच नहीं। इस्लाम पूरी मानवता के भाईचारे एवं एकता के पक्ष में रहा है इसलिए जो भारत के टुकडे करके दो आपस में लडने वाले समूह पैदा करना चाहते हैं वे सही मायनों में न सिर्फ भारत बल्कि इस्लाम के भी दुश्मन हैं। चाहे वे मेरे टुकडे टुकडे ही क्यों न कर दें लेकिन वे मुझे किसी गलत चीज को सही मानने के लिए मजबूर नहीं कर सकते[...] हमें अपनी दृष्टि छोडने की बजाय सभी मुसलमान भाइयों का दिल प्यार से जीतना होगा[2]

गांधी नेहरू द्वारा प्रस्तावित समाजवाद के पक्ष में भी नहीं थे, जिसमें बड़े पैमाने पर उत्पादन पर जोर दिया गया था। इस बड़े पैमाने पर उत्पादन, गांधी को डर था, इससे अधिक शोषण और शहरीकरण होगा। यह विकेंद्रीकरण पर जोर है जिसने गांधी को विनोबा भावे और जयप्रकाश नारायण के लिए प्रेरित किया, न कि उद्योगपतियों को। गांधी के अनुसार, एक वास्तविक स्वराज की स्थापना के लिए, यह नहीं है कि एक वर्ग शासन को दूसरे द्वारा प्रतिस्थापित किया जाए। यह उससे कहीं ज़्यादा है।
गांवों को मजबूत बनाना है। उन्होंने आगे माना कि एक आदमी की तुलना में एक संस्थान को बदलना बहुत आसान है। हालाँकि गांधी को संस्थानों और उनके कामकाज पर बहुत भरोसा था, लेकिन उन्हें व्यक्ति की पूर्णता पर अधिक भरोसा था। गांधी का दृढ़ विश्वास था कि पश्चिमी समाजवाद और साम्यवाद में स्वार्थ की प्रबल भावना थी।

वह चाहता था कि पूँजीपति और जमींदार अपने गाँव, मज़दूरों और किसानों की भलाई के लिए ट्रस्टियों का काम करें। ट्रस्टीशिप के उनके सिद्धांत जिसमें आर्थिक रूप से शक्तिशाली लोग आत्मसमर्पण करेंगे उनकी स्वेच्छा से कड़ी आलोचना की गई थी। एमएन रॉय जैसे विद्वानों ने कहा कि इस तरह के सिद्धांत से केवल उचित वर्ग को फायदा होगा और यह कि हिंसा और शोषण के जरिए ही शोषित अपने अधिकारों को जीत सकते हैं।हालांकि, गांधी ने कहा कि हिंसा एक या दो बुरे शासकों, दो पूंजीपतियों को नष्ट कर सकती है लेकिन ऐसे पूंजीपति हमेशा फसल काटते हैं। इसलिए, गांधी के अनुसार एकमात्र समाधान, पुरुषों को बदलना था और उन्हें नष्ट नहीं करना था। इसके अलावा, गांधी ने कहा कि अमीर गरीबों के सहयोग के बिना धन जमा नहीं कर सकते हैं; और

इसलिए, यदि गरीब अमीर के साथ सहयोग नहीं करते हैं, तो वे स्वाभाविक रूप से अपने तरीके से खर्च करते हैं।गांधी ने समाजवाद शब्द की अपनी परिभाषा भी दी। गांधी के अनुसार, यह उत्पादन, वितरण, विनिमय, लेकिन ईश्वर में विश्वास, सत्य, अहिंसा और समानता के साधनों के राष्ट्रीयकरण का उल्लेख नहीं करता है। इसलिए, सरल शब्दों में, गांधीवादी समाजवाद गैर-कब्जे और ट्रस्टीशिप के विचारों पर आधारित है।

इस प्रकार यह औद्योगीकरण, योजना या राज्य कार्रवाई की एक विचारधारा नहीं थी और इसलिए, यह बुद्धिजीवियों के लिए अपील नहीं करता है। इसके अलावा, गांधीवादी समाजवाद प्रकृति में मानवतावादी था। इसने गरीबों की देखभाल की और यह आर्थिक विचारधारा की तुलना में व्यक्तिगत आचरण का एक नैतिक कोड था। इसने हिंसा या राज्य कार्रवाई के माध्यम से अमीरों के उत्थान की परिकल्पना नहीं की।

जहाँ तक कम्युनिज्म पर गांधी के विचारों का सवाल है, हालाँकि उन्होंने जनता को संगठित करने की अपनी क्षमता की सराहना की, उन्हें निराशा हुई कि इससे तानाशाही की स्थापना होती है। गांधीवाद के लिए, साम्यवाद का एक विकल्प एक ऐसे समाज की स्थापना करना है, जिसमें उत्पादन के साधन सरल हों और आम आदमी उन्हें गांवों में चला सके।ऐसे समाज में, आर्थिक शक्ति की कोई एकाग्रता नहीं होगी, और इसलिए राज्य दूर हो जाएगा और मार्क्सवादी सपना पूरा नहीं होगा। हालांकि, एमएन रॉय जैसे विचारकों ने गांधी द्वारा व्यक्त किए गए विचारों की कड़ी आलोचना की और कहा कि उन्हें इस बात का पछतावा है कि गांधी ने अपने कार्यकर्ताओं को अपने नियोक्ताओं को शोषक के रूप में नहीं देखना सिखाया बल्कि उन्हें अपने बड़े भाइयों के रूप में भरोसा किया और वे जमींदार खुश थे कि गांधी ने उन्हें ट्रस्टियों का ट्रस्टी माना किसानों के हित।उन्होंने अपने कमजोर और पानी वाले सुधारवाद के लिए गांधी की आलोचना की। एक प्रगतिशील आर्थिक विचारधारा नहीं होने के कारण गांधी की आलोचना की गई जो उन्हें जनता के लिए उचित नेतृत्व दे सके। संक्षेप में। कम्युनिस्टों ने गांधी के आर्थिक और सामाजिक दर्शन के खिलाफ उनके आरक्षण के कारण गांधी द्वारा की गई किसी भी गतिविधि का विरोध किया। गांधी के भारत छोड़ो आंदोलन का समर्थन करने के लिए उनके विरोध में यह विरोधाभास था। गांधीवादी दर्शन की आलोचना के बावजूद।
कम्युनिस्टों का गांधी के प्रति एक महान मानवतावादी के रूप में बहुत सम्मान था। अपनी एक किताब में गांधी के आदर्शवाद ईएमएस नंबूदरीपाद पर टिप्पणी। महात्मा और द इस्म ने कहा कि सत्य, अहिंसा, जीवन के सुखों का त्याग, स्वतंत्रता, लोकतंत्र, महिलाओं की मुक्ति, महिलाओं की मुक्ति, सभी धार्मिक समूहों और समुदायों की एकता, आदि जैसे नैतिक मूल्य अनिल अविभाज्य अंग थे। उनके जीवन और शिक्षाओं की। लेकिन, दुर्भाग्य से, गांधी ने श्रमिकों और किसानों को भाइयों और उन वर्गों के साझीदारों के रूप में माना जो उन पर अत्याचार करते थे।

वर्तमान में कोई भी राजनीतिक दल सनातन के मूल्यों को अपना आधार नहीं बनाये हुए हैं। जो लोग बीजेपी को हिन्दूवादी पार्टी मानते हैं वे ध्यान रखें कि बीजेपी में भी हिंदुत्व नहीं बल्कि "गांधीवादी समाजवाद" है। इसीलिए बीजेपी के नेता बार बार कहते रहते हैं कि बीजेपी का मतलब भगवा नहीं है और भगवा मतलब बीजेपी नहीं है।

ये तो किस्मत अच्छी रही बीजेपी की शुरुआत में जब बीजेपी को मात्र दो सीट मिलने के बाद अशोक सिंघल जी ने राम मंदिर के मुद्दे को हवा दे दी, वर्ना आज भी बीजेपी केंद्र में नहीं आ पाती। संघ प्रमुख मोहन भगवत ने एक कार्यक्रम में यह बात कही भी है कि हमें तो अपनी प्रकृति और विचारधारा के विरुद्ध जाकर राम मंदिर आंदोलन में भाग लेना पड़ा और मंदिर मुद्दे को उठाना पड़ा।
यानी सीताराम गोयल जी के वो बात यहां सच साबित हो जाती है जिसमें उन्होंने कहा था की बीजेपी ने तो सिर्फ राजनीतिक फायदे के लिए ही राम मंदिर मुद्दे को उछाला था, सनातन मूल्यों के लिए बिलकुल भी नहीं।

सीताराम गोयल जी साफ़ कहा था कि संघ ने वीर सावरकर जी को मात्र इसलिए अलग फेंक कर उनका इतिहास दबा दिया क्योंकि वीर सावरकर जी संघ को सनातनवादी और हिन्दुत्वप्रेमी संघठन के रूप में समझ कर चल रहे थे और वे संघ से उसी क्षेत्र में काम करवाना भी चाहते थे। जबकि संघ को कोई भी कट्टर हिन्दू पसंद नहीं था, इसलिए संघ ने न सिर्फ योगी वीर सावरकर जी को बल्कि महंत अवैद्यनाथ जी (आदित्यनाथ जी के दादा गुरु), और मुझे भी नापसंद कर दिया क्योंकि हम लोग हिन्दू हितों की बात करने लगे थे और यही बात संघ को पसंद नहीं आ रही थी।

योगी आदित्यनाथ जी के दादा गुरु महंत अवैद्यनाथ जी भी कट्टर हिंदुत्व की श्रेणी में आते थे क्योंकि वे भी हिन्दुओं की आवाज उठाते थे, उन्होंने ही राम मंदिर के गर्भगृह में रामलला की मूर्ति को स्थापित किया था। इसलिए उन्हें भी एक तरफ कर दिया गया। महंत अवैद्यनाथ जी के बाद से आजतक किसी ने भी हिन्दुओं की आवाज़ किसी ने नहीं उठाई है।
वर्तमान समय में कहने के लिए तो लोकसभा के 543 और राज्यसभा के 245 सांसद हैं और इनमें भी सबसे अधिक संख्या में हिन्दू ही हैं। लेकिन विडम्बना है कि एक भी सांसद ने गोहत्या प्रतिबन्ध के पक्ष में और मंदिरों के विध्वंस के विरोध में आवाज़ नहीं उठाई है। और ना ही आजतक के इतिहास में किसी सांसद ने इस बात के लिए आवाज़ उठाई है कि मंदिरों को सरकार से मुक्त कर दिया जाय या फिर हिन्दुओं को भी गुरुकुल चलाने के लिए संवैधानिक अधिकार दिए जाएँ।

संसार के प्रत्येक क्षेत्र में अनेक प्रकार के वाद प्रचलित हैं। कुछ का आधार भाव है तो कुछ का कोई विचार। इसी तरह कुछ वाद व्यक्तियों के नाम से, उनकी विचारधारा को प्रतिबिंबित करने के लिए भी अस्तित्व में आए हैं। मार्क्सवाद, गांधीवाद जैसे कुछ वाद व्यक्ति – आधारित हैं, जबकि समाजवाद एक विशिष्ट विचारधारा को रूपायित करने वाला वाद है। गांधीवाद का मूल आधार है अहिंसा, सादगी, प्रेम, भाईचारा, सत्य के प्रति आग्रह और सादगी। इन सबका समग्र रूप है मानवीयता का उच्च भाव। इसमें व्यष्टि और समष्टि दोनों का सामान मूल्य एवं महत्त्व स्वीकार किया गया है। इस कारण सहिष्णुता और समानता का भाव भी गांधीवाद के अंतर्गत आ जाता है।
समाजवाद मूलतः समष्टिवादी चेतना पर आधारित वाद है। लेकिन आजकल कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित, सिद्धांतों, मान्यताओं, समानता, सहकारिता जैसी अनेक बुनियादी बातें गांधीवाद और समाजवाद में एक सी कही या मानी जा सकती हैं। व्यक्ति और उसकी मानवीयता की मूल अवधारणा को भी ये दोनों वाद एक – जैसा ही महत्त्व देते हैं। फिर भी दोनों में एक बुनियादी अंतर पाया जाता है। वह यह कि गांधीवाद की चेतनागत अवधारणा आध्यात्मिकता और उसकी प्रवृत्तियों पर आधारित है, जबकि समाजवाद की द्वंद्वात्मक भौतिकवाद पर। गांधी बाहर से भीतर की ओर अर्थात भौतिकता की उपेक्षा का आत्म तत्व के चिंतन विकास की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं, जबकि कार्ल मार्क्स आदि समाजवादी चिंतक आतम तत्व को प्रत्यक्षतः कोई महत्त्व न देकर बाहिरी अर्थात संसार के भौतिक तत्वों के चिंतन – विकास को महत्त्व देने वाले हैं। जहां तक श्रम का प्रश्न है, इसका महत्व एवं मूल्य दोनों ने स्वीकार किया है। हां, गांधी श्रमाश्रित सादा जीवन जीने की बात करते हैं, जबकि समाजवादी श्रम और पूंजी के समान विभाजन पर बल देते हैं। गांधी पूंजीपति को पूंजी का मालिक नहीं बल्कि ट्रस्टी यानी संरक्षक मात्र मानने पर बल देते हैं। वे यह भी कहते हैं कि जिसके पास पूंजी है उसे अपने आपको उसका ट्रस्टी मानकर वह सब कुछ जीवन और समाज – हित के कार्यों के लिए अर्पित कर देना चाहिए। इसके विपरीत समाजवादी पूंजी पर एकाधिकार को स्वीकार नहीं करते, बल्कि उसे समाज की संपत्ति मानते हैं। वे यह भी कहते हैं कि पूंजीपति वर्ग यदि स्वेच्छा से समाज हित में पूंजी नहीं लगाता तो वह उससे छीन ली जानी चाहिए।

परिणाम

गांधीवाद सादगी पर बल देता है। इच्छाओं का विस्तार करने से रोकता है। संयम और आत्मानुशासन आवश्यकता स्वीकारता है। इसके विपरीत भौतिक दृष्टि के कारण समाजवाद सबको सभी भौतिक वस्तुएं मिलने – पाने के अधिकार के सिद्धांत की स्थापना करता है। गांधीवाद उतना लोक पर ध्यान ना दे, परलोक सुधार को जरूरी मानता है, जबकि समाजवाद लोक को ही सब कुछ मानता है। गांधीवाद में सत्य का आग्रह करके हृदय – परिवर्तन पर बल दिया गया है, जबकि समाजवाद सशस्त्र क्रांति एवं प्रत्याक्रमण करके छीन लेने या अधिकार कर लेने की प्रक्रिया पर बल देता है। गांधी दूसरों के भले के लिए अपने स्वार्थों को त्याग देने को तत्पर दिखाई देते हैं, जबकि समाजवाद में त्याग – तपस्या जैसी किसी बात का प्रावधान नहीं।

गांधीवाद हर व्यक्ति के विकास के लिए परंपरागत उद्योग – धंधों, अपने साधनों और साधनों की पवित्रता पर बल देते थे। उनके द्वारा चरखा कातने की परंपरा डालना नीति – व्यवहारगत बातों का प्रतीक है। इसके विपरीत समाजवाद ऐसा कुछ ना मान बड़ी और लंबी छलांग लगाने पर विश्वास करता रहा है। साथ ही साधन चाहे कैसे भी क्यों ना हों, समाजवाद उनकी पवित्रता, अपवित्रता को नहीं परिणाम को ही महत्वपूर्ण मानता है। इसी कारण गांधीवाद अहिंसा का मार्ग अपनाता है, जबकि समाजवाद अहिंसा की बात न कर आवश्यकतानुसार हिंसा को भी आवश्यक या बुरा नहीं मानता।

जहां तक मूल उद्देश्य का प्रश्न है, गांधीवाद हो या समाजवाद; कहने का अन्य सभी वादों का भी मूल एवं मुख्य उद्देश्य एक है। वह है सर्वतोभावने व्यापक मानवता का हित – साधन। हां, इस हित -साधन के लिए गांधीवाद किसी भी तरह की छीना झपटी पर विश्वास नहीं रखता। वह हस्तशिल्पों हस्तकलाओं को प्रश्रय देने का पक्षपाती है। इसके विपरीत समाजवाद छीना – झपटी से परहेज नहीं करता। वह हस्तशिल्प आदि को आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए उपयुक्त एवं पर्याप्त न मान बड़े-बड़े कल – कारखाने स्थापित करने, औद्योगीकरण, यंत्रीकरण आदि का पक्षपाती है।

इस प्रकार इन तो प्रमुख वादों का बुनियादी अंतर स्पष्ट है। गांधी के देश भारत की यह त्रासदी ही कही जाएगी कि यहाँ नाम तो हर स्तर पर गांधी का ही लिया जाता है, पर आचरण – व्यवहार उसके सर्वथा विपरीत तथाकथित समाजवादी या जाने कौन से वाद के ढंग से हो रहा है। निश्चय ही दुःखद स्थितियों का एक बहुत बड़ा कारण यह अस्पष्टता ही है।

अछूतोद्धार के गांधीवादी मॉडल ने हिंदू कवियों को बहुत प्रभावित किया। इस मॉडल में अस्पृश्यता का विरोध था, वर्णाश्रम-धर्म का खंडन नहीं था, हिंदुओं के हृदय-परिवर्तन का आग्रह था, पर हिंदुत्व का विरोध नहीं था। उसमें अछूतों की पढ़ाई-लिखाई से इनकार तो नहीं था, पर उनके स्वाभिमान को कुचलने वाले गंदे पेशों को छोड़ने का समर्थन नहीं था। इस मॉडल से प्रभावित हिंदू कवियों ने अछूतों को महिमामंडित करने वाली कविताओं की झड़ी लगा दी। अछूतोद्धार के इसी गांधीवादी मॉडल पर 1927 में 'चांद' पत्रिका ने 'अछूत अंक' निकाला था। इसी अंक से अछूतों के संबंध में लिखीं गई कुछ कविताओं के नमूने यहां दिए जाते हैं।
इन कविताओं का मुख्य स्वर गांधीवादी है, जो हिंदुओं को यह समझा रहा है कि यदि हिंदुओं ने अछूतों को गले नहीं लगाया, तो मुसलमान और ईसाई उन्हें गले लगाने को तैयार बैठे हैं। शोभाराम 'धेनुसेवक' ने 'अछूत आवेदन' कविता में कहा–

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 3, Issue 4, April 2016 |

अछूतों को हड़पने के लिये तैयार बैठे हैं।

तिरस्कृत तुम से हो कितने विधर्मी अब बने बैठे।
गिराने को तुम्हें वे खाईयां गहरी खने बैठे।।[1]
पं. रामचंद्र शुक्ल 'सरस' ने 'अछूत' शीर्षक कविता में अछूतों को महिमामंडित करते हुए लिखा–
शेष-विदेह सनेह चाहते, हैं सराहते कह कर पूत।
हैं हम उन्हीं विष्णु-चरणों से, कैसे हैं तब कहो अछूत?
लेकिन उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि पद (शूद्र) और मुख (ब्राह्मण) में समता नहीं हो सकती–
हां, यह सच है पद अरु मुख में, कभी न हो सकती समता।
दोनों ही हैं एक देह के, अतः उचित क्षमता-ममता।।[2]
अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने लिखा कि छूने से कोई अछूत जन अपूत नहीं हो जाता–
'हरिऔध' धरम-धुरन्धर मुदित होत,
मोह-मद बिनसे प्रमादिन के मूये ते।
छाये रहे उर मैं अवनि के अछूते-भाव,
बनत अपूत ना अछूत-जन छूये ते।।[3]
कुमारी सरस्वती देवी ने 'आसार' कविता में हिंदुओं को चेतावनी देते हुए लिखा–
आंख क्यों है अब तलक यों देखती?
कान क्यों हैं सुन रहे उस राग को?
जब हमारे ही हमारे सामने,
थामते हैं दामने-इसलाम को।।
जुल्म से लाखों ईसाई हो गये,
जुल्म का फिर भी न पारावार है।
जुल्म होते हैं धरम के नाम पर,
कौम के मिटने का यह आसार है।।[4]
यही चेतावनी रामचरित उपाध्याय ने 'परिरम्भ' कविता में दी–
ऊंच-नीच के भेद भगा कर, कर दो परिरम्भण आरम्भ।
क्या हिन्दुत्व मिटा देने पर, चाटोगे ले कर के दम्भ?
उसी म्लेच्छ से हाथ मिलाते, जो पहले का रहा चमार।
पर, छूते थे उसे न पहले, इस हिन्दूपन को धिक्कार।।
जब कुत्ते भी हट जाते हैं, तुम से पाकर के दुत्कार।
फिर अछूत क्यों तजें न तुमको? कुछ तो मन में करो विचार।।[5]
व्यास मोतीलाल शर्मा ने 'विश्वास-घात' कविता में वर्ण-व्यवस्था की प्रशंसा करते हुए लिखा कि जब तक वर्ण-धर्म का राज रहा, चारों वर्ण उन्नति करते रहे। यथा–
स्वार्थ जब परमार्थ का शुभ अंग था,
प्रेम-सरिता बह रही थी देश में।
देश-उन्नति अर्थ करते कर्म थे,
वर्ण चारों आर्य जन के वेश में।।
कवि ने आगे और भी निर्लज्जता से कहा कि अछूतों को 'महत्तर' (मेहतर) का पद दिया और एक होते हुए भी उन्हें 'डेढ़' (ढेढ़) कहा। यथा–
प्रथमतः जिनको 'महत्तर' पद दिया,
आज उनको भ्रष्ट, नीचा, कह रहे।
एक हो, निज 'डेढ़' था जिनको कहा,
नीच से भी नीच हो दुख सह रहे।।[6]
लेकिन यह सवाल यहां उठाना स्वाभाविक है कि इन गांधीवादी कवियों ने 'महत्तर' और 'डेढ़' जैसे सम्बोधन दलितों को ही क्यों दिए, उनका प्रयोग द्विजों के लिये उन्होंने क्यों नहीं किया?
इसी तरह गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने अछूतों को सेवक श्रेणी में ही रखा है, स्वतंत्र मनुष्य-श्रेणी में नहीं। यथा–
सेवक अगर अछूत न होते, कैसे आप अछूते रहते
किसी तरह तो पूत न होते, सेवक अगर अछूत न होते।[7]
ब्रह्मदत्त दीक्षित 'ललाम' ने 'अछूत' की महानता का बखान इस तरह किया–
वे पतित अछूत अपूत दीन उन सा है जग में धन्य कौन?

जग का वैषम्य सहा करते वे शान्त तपस्वी धीर मौन।
उनकी शबरी से राम बने, उनकी कुबरी से श्याम बने।
अविराम उन्हीं की सेवा से, कितने घनश्याम 'ललाम' बने।।[8]
इसी तरह भगवती चरण वर्मा ने लिखा—
अरे ये इतने कोटि अछूत, तुम्हारे बेकौड़ी के दास।
दूर है छूने की बात, पाप है आना इनके पास।
सुभद्रा कुमारी चौहान मंदिर-प्रवेश को लक्ष्य करते हुए एक अछूत स्त्री में जबरन देव-भक्ति दिखा रही हैं–
मैं अछूत हूं मंदिर में आने का,
मुझको अधिकार नहीं है।
किन्तु देवता यह न समझना,
तुम पर मेरा प्यार नहीं है।।
प्यार असीम अमिट है फिर भी,
पास तुम्हारे आ न सकूंगी।
यह अपनी छोटी-सी पूजा,
चरणों तक पहुंचा न सकूंगी।।[9]
आरसी प्रसाद सिंह ने 'हरिजन' शीर्षक से अपनी लंबी कविता में लिखा कि हरिजन तो राष्ट्र का कर्णधार है–
रे कौन तुम्हें कहता अछूत?
तुम तो स्वराष्ट्र के कर्णधार।
तुम शांति-शील के साधु चित्र
रे कौन तुम्हें कहता अछूत?[10]

हिंदी जगत में इस तरह की कविताओं की बाढ़-सी आ गयी थी। आजादी के बाद तक यह दौर चला। हिंदी कवि ऐसी कविताएं लिखकर अछूतों के प्रति अपना दायित्व नहीं निभा रहे थे, वरन् वे गांधी के 'हरिजन मॉडल' को अपना समर्थन दे रहे थे। वे इस भ्रम में जी रहे थे कि वे अछूतों को 'महान', 'राष्ट्र सेवक', 'राष्ट्र का कर्णधार' और 'विष्णु-चरण' बताकर अछूतों के लिये कोई महान काम कर रहे थे। 'पूना-पैक्ट' में भले ही गांधी और हिंदुओं के दबाव में दलित पक्ष पराजित हो गया था, पर इस पराजय में भी दलित चेतना प्रखर हुई थी। उसने पूना-पैक्ट को राजनैतिक आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया था, गांधीवाद और हिंदुत्व को स्वीकार नहीं किया था।
इस दलित चेतना ने दलितों को 'सेवक' या 'विष्णु-चरण' के रूप में नहीं देखा और न 'हरिजन' माना। इसके विपरीत, उसने दलित को एक स्वतंत्र नागरिक के रूप में अपना विकास करने पर जोर दिया। इस दृष्टि से दलित चेतना के कवियों ने सामाजिक और आर्थिक शोषण के खिलाफ आवाज उठायी और दलित कविता को नयी धार दी। इन कवियों ने दलितों के राजनैतिक शोषण की भी खबर ली और गांधीवाद के ढकोसले को भी उजागर किया। उन्होंने गांधीवादी कवियों की इस धारणा की तीखी आलोचना की कि दलित मंदिर-प्रवेश चाहते हैं और हिन्दुओं से शासित होकर रहना चाहते हैं। उन्होंने जाति और वर्ग-विहीन समाज की स्थापना के लिये लोकतंत्र तथा समाजवाद की आवश्यकता पर जोर दिया।
इस दौर के कवियों में प्रकाश लखनवी, संतराम न्यायी 'अवधी', कुंवर उदयवीर सिंह, मनोहर लाल प्रेमी, पागल बाबा, राम स्वरूप शास्त्री, मंगलदेव विशारद, सद्‌गुरु शरण 'चंद्र', दुलारे लाल जाटव, बिहारी लाल कलवार, भीखाराम गड़रिया, आचार्य मेधार्थी विद्यालंकार, रमेश चन्द्र मल्लाह, राम शरण विद्यार्थी कहार, बदलू राम 'रसिक', वीर सिंह 'चंद्र', सत्यमित्र विद्यालंकार, नंदकिशोर न्यायी, सूर्य कुमार, जगत सिंह 'सेंगर', श्रीराम वर्मा 'चिंतक', रघुनाथ राम, राम स्वरूप आर्य 'भंवर', नत्थू सिंह 'पथिक' और रणजीत सिंह इत्यादि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।
इन कवियों का समय 1960 से 1980 तक का है। इन दो दशकों की दलित कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसके रचनाकारों में दलित जातियों के साथ-साथ पिछड़ी जातियों के कवि भी शामिल थे। इस कविता ने जाति के तंग दायरे को तोड़ा था और शोषण और अन्याय पर आधारित पूंजीवादी और ब्राह्मणवादी व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाई थी, जो दमनकारी थी। ये कवि शोषक वर्गों की सत्ता को ध्वस्त कर दलित-शोषित सर्वहारा की सत्ता चाहते थे। 'प्रकाश' लखनवी ने आल्हा की तर्ज में 'शोषित पुकार' लिखी, जिसमें उन्होंने लोकतंत्र और साम्यवाद का पक्ष लेते हुए कहा–
बामनशाही ढोंग मिटाओ, अब तो भारत है आजाद।
साम्यवाद की बजे दुंदभी, वर्ण-जाति होवे बरबाद।।
लोकतंत्र का तत्व यही है, खुलैं तरक्की के सब द्वार।
बंद होयं शोषण की राहें, अर्थ व्यवस्था का होय सुधार।।
शोषक-शोषित का है झगड़ा, शोषक रहे भ्रांति फैलाय।
शोषित इनकी बात न मानै, इनकी कलई सब खुलि जाय।।
सौ मां नब्बे शोषित हो, शोषक सौ मां दस हैं यार।
एका करौ सबै शोषित मिलि, करो हुकूमत पर अधिकार।।

नब्बे प्रतिशत बहुमत भैया काहे मैया रहे लजाय।
सकल देश तुम्हरी मुट्ठी मां, जागो भैया रहे जगाय।।[11]

पिछड़े वर्ग के 'प्रकाश' लखनवी, चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु का उपनाम था। उन्होंने अपनी साहित्य-यात्रा कविता से ही आरंभ की थी। उनकी कविताएं इतनी लोकप्रिय हुईं, कि जनता ने उन्हें 'राष्ट्रकवि' की उपाधि दे दी थी। स्वाधीनता संग्राम के दिनों में उनकी देशभक्ति पूर्ण कविताएं जवानों में जोश भरती थीं। एक बार एक अंग्रेज अफसर को छावनी में तलाशी के दौरान एक भारतीय सिपाही की जेब से जिज्ञासु की कविताओं की पुस्तक बरामद हुई थी, जिसके लिये उस सिपाही को भी दंडित किया गया था और कवि को भी 124ए के तहत गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया था।

दरअसल, बहुजन समाज ने जिस आजादी का सपना देखा था, आजादी मिलने के बाद वह सपना पूरा नहीं हुआ। उन्होंने देखा कि स्वतंत्र भारत में भी ब्राह्मणशाही कायम है और शोषकों को हर तरह का शोषण करने की आजादी मिली हुई है। इस स्थिति का बहुत ही मार्मिक वर्णन प्रकाश लखनवी ने अपनी कविता 'जमाने की रफ्तार' में किया। यथा–

मिल-मालिकों से चुपके, लाखों की मदद लेना,
बढ़वाना कीमतों का, पब्लिक का गला कटाना।
मोटों की मदद करना, चुसवाना गरीबों को,
नश्तर फलक के दिल में, शोखी से है लगाना।
चोर बाजारी रिश्वत, रोकी न गयी जिससे,
क्या खाक हुकूमत का, बांधा है उसने बाना?
पानी की तरह पैसा, पब्लिक का उड़ रहा है,
होता है विमानों पर लीडर का आना-जाना।
बापू पहन लंगोटी और खा के मरे गोली,
है शर्म, उनके पीछे, यूं लूट-सी मचाना।
दामन में नेहरू के छुप, उल्लू सीधा करना,
शुद्धात्मा के मुख पर, कालिख को है लगाना।
घर में तो तबाही है बाहर है वाह-वाही,
क्या शान है गजब की, यूं घर का जर लुटाना।
यह दास्तान कौमी, लंबी है दुख भरी है,
मातम-सा बन गया है, गम-दर्द का तराना।[12]

यहां कवि ने आजाद भारत के नेहरू-युग की दास्तान सुनायी है। पंद्रह अगस्त का दिन दलित कवियों के लिये भी खुशी का दिन था, क्योंकि देश अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त हुआ था। अब अपना राज था, पर शीघ्र ही यह खुशी दुख में बदल गयी, जब दलितों ने देखा कि भारत की शासन-सत्ता ब्राह्मणों, सामन्तों और पूंजीपतियों के हाथों में आयी है और दलित-सर्वहारा वर्ग के हिस्से में गुलामी आयी है। अतः दलित-पिछड़े कवियों ने 'पंद्रह अगस्त' की वर्षगांठ का स्वागत नहीं किया। प्रकाश लखनवी ने लिखा–

यह पंद्रह अगस्त, आजादी का दिन है, पर किसकी?
करतल-गत है पूंजी, प्रभुता, शासन-सत्ता जिसकी।।
राम राज्य है मुट्ठी भर को, सुख-संपत्ति खुशहाली।
बहुजन दुखी अभाव-ग्रसित हैं, रोजी से भी खाली।।
पिछड़ा और पिछड़ता जाता, दबा दब गया और।
अगड़ा और अगड़ता जाता, बना हुआ सिरमौर।।
जनता की बढ़ गयी गुलामी, भय दुख दैन्य खिराज।
ब्राह्मण-क्षत्रिय-लालाशाही को है पूर्ण स्वराज।।
क्रांति बिना ही शासन बदला, दे सकता न सुधार।
बहुजन सुख हित क्रांति वंदना, करिये क्रांति पुकार।।
भीम प्रतिज्ञा महाक्रांति की, बंधु कीजिए आज।
अर्थ व्यवस्था तोड़-फोड़कर, बदलो धर्म समाज।।[13]

यह सातवें दशक की कविता है। उस समय तक 'बहुजन' शब्द राजनीति में नहीं आया था। साहित्य में सर्वहारा और शोषित वर्ग के लिये 'बहुजन' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग जिज्ञासु जी (प्रकाश लखनवी) ने ही किया था। 'बहुजन दुखी अभाव ग्रसित है' के रूप में वे बहुसंख्यक शोषित समाज के दुखी होने की बात कर रहे थे। इसी कविता में कवि बहुजन समाज को महाक्रांति की 'भीम प्रतिज्ञा' भी कराता है। कहना न होगा कि कवि ने यहां आंबेडकर की सामाजिक क्रांति का भी स्मरण किया है और समाजवादी आर्थिक क्रांति का भी।

कवि शोषित वर्गों को उनके इतिहास से भी परिचित कराता है। वह अपनी 'शोषित-प्रबोध' कविता में बताता है कि किस तरह आर्यों ने छल-बल से भारत के मूल-निवासियों को पराजित किया और वर्ण-विधान बनाकर आर्य राज्य स्थापित किया। इस कविता पर स्वामी अछूतानंद जी 'हरिहर' के 'आदि हिंदू' सिद्धांत का प्रभाव देखा जा सकता है। यथा–

हुआ कायम आर्यों का राज्य, बना विध्वंसी वर्ण-विधान।
बन गये भिक्षुक सबके गुरु, लगे बनिये देने धन-दान।।
शेष बहुसंख्यक जनता कृषक तथा उत्पादक, शिल्पी, श्रमिक।
बनायी गयी शूद्र औ दास, दलित, शोषित, वंचित, निर्धनिक।।
विप्र, क्षत्री बनिये तो बने 'द्विजाती' उच्च वर्ण के लोग।
शेष वर्णाश्रम शूद्र अछूत भोगने लगे कष्ट दुख भोग।।
मिले फिर आर्यों के शक, हूण, एक बन 'मुंशी' दूजा 'जाट'।
बन गया पूरा शोषक गुट्ट, कर दिया जिसने बाराबाट।।[14]

कवि आगे कहता है कि अब देश स्वतंत्र है, जनतंत्र कायम है और बालिग मताधिकार प्राप्त है। तुम शोषितों की संख्या भी ज्यादा है, अतः उठो और देश पर कब्जा कर लो। यथा–

देश अब तो है पूर्ण स्वतंत्र, यहां पर कायम है जनतंत्र।
और है बालिग मत-अधिकार, तुम्हारी संख्या अमिति अनंत।।
उठो, जागो, तोड़ो यह नींद, देश पर कर लो निज अधिकार।
यही बाबा का है उपदेश, यही है ज्ञान, नीति का सार।।[15]

स्वतंत्रता के बाद देश में कांग्रेस की हुकूमत कायम हुई। उसने डॉ. आंबेडकर के व्यवस्था-परिवर्तन के आंदोलन को खत्म करने के लिये दलित नेता जगजीवन राम को मंत्री बनाया, जिन्होंने 'दलित वर्ग संघ' बनाकर दलितों को कांग्रेस और गांधीवाद से जोड़ने का काम किया। वे कांग्रेस के एक मात्र कद्दावर दलित नेता माने जाते थे, जो डॉ. आंबेडकर के विरोधी थे। कवि प्रकाश लखनवी ने 1975 में 'जगजीवन-स्तवन' शीर्षक से एक आलोचनात्मक कविता जगजीवन राम पर लिखी, जो अत्यंत तीखी और विचारोत्तेजक कविता थी। इस कविता में कवि ने दलितों की दुर्दशा का वर्णन करते हुए जगजीवन राम से बहुजन-हित में क्रांति करने हेतु बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर का सच्चा उत्तराधिकारी बनने की अपील की थी। यह पूरी कविता इस प्रकार है–

हे कांग्रेस के ऊंचे नेता, हरिजन-हितकारी जगजीवन।
तुम दलितों के कुल भूषण हो, शोषित-दुखहारी जगजीवन।।
ये श्रमिक कमेरे शोषित जन, मजदूर कड़ी मेहनत वाले।
ये भी मानव-अधिकारों के सब हैं अधिकारी जगजीवन।।
खिलवाड़ हो रहा जो इनसे, उससे तो आप सुपरिचित हैं।
अंधेर चलेगा यह कब तक अतिशय दुखकारी जगजीवन?
इकरार हुआ था क्या इनसे, क्या-क्या थे वादे किये गये?
अब ये सब बातें कहां गयीं, हरिजन-उपकारी जगजीवन?
शिल्पी, उत्पादक और श्रमी, नब्बे प्रतिशत तो दास बने।
सौ में दस शोषक पूंजीपति शोषक सरकारी जगजीवन।।
मुट्ठी भर शोषक तो प्रभु हों, बहुजन समाज आज्ञाकारी।
जनतंत्र यही क्या है सचमुच या है ऐयारी जगजीवन।।
ओहदे ऊंचे उनको चहिए, सत्ता और माल खजाना सब।
बहुजन समाज पीसे चक्की, श्रम से अति भारी जगजीवन।।
ऊंची शिक्षा, ऊंचे ओहदे, सब ही रिजर्व दस प्रतिशत को।
नब्बे प्रतिशत हों, दीन-हीन बरबाद दुखारी जगजीवन?
भीतर रहकर यदि आप नहीं कुछ कर सकते, तो फिर सुनिए–
कर त्याग निकल आयें बाहर, फैले उजियारी जगजीवन।
नेतृत्व करें बाहर आकर, बहुजन समाज सिरमौर बनें,
बाबा के आप बनें सच्चे उत्तर-अधिकारी जगजीवन।।[16]

कह नहीं सकते कि जगजीवन राम ने इस कविता को सुना था अथवा नहीं? पर, उन दलितों में, जो डॉ. आंबेडकर के सपनों के अनुरूप पूंजीवादी और ब्राह्मणवादी व्यवस्था को खत्म करके समाजवादी व्यवस्था की स्थापना करना चाहते थे, इस कविता ने जगजीवन राम की छवि शोषक वर्ग के प्रतिनिधि की बना दी थी।

दलित कवि पूना-पैक्ट की पीड़ा को नहीं भूले थे। दलितों के प्रतिनिधियों ने गांधी जी से हाथ मिलाकर जिस तरह भारत की आजादी का मार्ग प्रशस्त किया था, उसे भी वे जानते थे। पर, आजादी के बाद, इन कवियों ने यह भी अनुभव किया कि जिन सवर्णों पर दलितों ने विश्वास किया था, वे ही शोषक बन गये थे। इस स्थिति पर दलित कवियों ने विचारोत्तेजक और महत्वपूर्ण कविताएं लिखीं। दुलारे लाल जाटव ने अपनी कविता में कहा–

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 3, Issue 4, April 2016 |

सुनो शोषितों, गांधी के संग तुमने बिगुल बजाया था।
शोषण कर्ता अंग्रेजों को लंदन खेद पठाया था।।
पर अब तो ब्राह्मण-ठाकुर-लाला ही शोषणकारी हैं।
जिनकी स्वार्थ पूर्ण माया से, शोषित सभी दुखारी हैं।।
ऊपर से नीचे तक इनका शासन में है जाल बिछा।
गांधी और खादी-परदे में कैसा भ्रष्टाचार मचा।।
यह कैसा अंधेर, जहां पर दस की तो सब चलती है।
पर नब्बे प्रतिशत बहुमत की दाल नहीं कुछ गलती है।।
तुम तो हो सम्पत्ति देश की, वोट तुम्हारे हैं ज्यादा।
क्यों तुमने गफलत में सर पर भार लुटेरों का लादा।।
देश तुम्हारा, तुम हो राजा, तुम न कहीं से आये हो।
ले लो अपना राज हाथ में, क्यों अब देर लगाये हो।।[17]

इस दौर के दलित-पिछड़े कवि समाजवादी व्यवस्था के पक्षधर थे। वे इस देश का सबसे बड़ा सर्वहारा और शोषित वर्ग दलित-पिछड़े को मानते थे। वे केवल पूंजीवादी व्यवस्था का ही खात्मा नहीं चाहते थे, अपितु, ब्राह्मणवादी व्यवस्था का भी अंत चाहते थे। इसके लिये वे स्वतंत्र भारत के शासकों से अपीलें नहीं करते थे, वरन् शोषितों को जागरूक करते थे। उनका लक्ष्य वही था, जो डॉ. आंबेडकर का था– जाति और वर्ग विहीन समाज की स्थापना और भारत को एक राष्ट्र बनाना। रमेशचंद्र मल्लाह की यह कविता देखिए, जो इस विषय की विचारोत्तेजक कविता है–

ब्राह्मणशाही राज मिटाना शोषित वीरो तुमको है।
शोषित-संघी राज बनाना, शोषित वीरो तुमको है।।
जाति-पाँति का भेद भगाना, शोषित वीरो तुमको है।
एक राष्ट्र का बिगुल बजाना, शोषित वीरो तुमको है।।[18]

भारत में लोकतंत्र के नाम पर जो जन-विरोधी व्यवस्था कायम हुई, उसका मुखिया यद्यपि ब्राह्मण था, पर उसका संरक्षक सामंती और पूंजीपति वर्ग था। इसलिये आजादी के बाद जो सत्ता ब्राह्मणों के हाथों में आयी, उसमें ब्राह्मण भी एक शोषक वर्ग के रूप में था। लोकतंत्र में ब्राह्मण के इस शोषक रूप को दलित-पिछड़े कवियों ने अच्छी तरह पहचान लिया था। इसे हम दलित कवि भीखाराम गड़रिया की 'पंडित जी' कविता में देख सकते हैं, जो एक व्यंग्यात्मक कविता है, पर यथार्थपरक है। यथा–

मैं पंडित जी कहलाता हूं।
मैं राजनीति का ज्ञाता हूं।।
निबलों से खूब अकड़ता हूं, सबलों के पैर पकड़ता हूं,
दुनिया को धर्म जकड़ता हूं, फिर माल चकाचक खाता हूं।
शोषण के दांव बताता हूं, खुद मैं भिक्षुक बन जाता हूं,
मैं भोग विलास सिखाता हूं, अपना ऐश्वर्य बढ़ाता हूं।
मैं पूरा अवसरवादी हूं, अगुवा बनने का आदी हूं,
मैं धूर्त, पहनता खादी हूं, दुनिया को ठग कर खाता हूं।
मैं पंडित जी कहलाता हूं।।[19]

इसी भाव-भूमि पर बिहारी लाल कलवार ने यह सिंह-गर्जना की–

सुखन का हमारे असर देख लेना।
जो हैं जेर उनको जबर देख लेना।।
जिन्हें आप अब तक समझते थे गीदड़।
वही होंगे शेरे-बब्बर देख लेना।।
अजी रोटियां-बेटियां एक होंगी।
रहेगी न कुछ भी कसर देख लेना।।
न आयेगा चकमे में अब कोई शोषित।
फिरेंगे इधर सब बशर देख लेना।।
इधर हम हैं नब्बे, उधर दस हैं शोषक।
न फिर भी खबर हो, समर देख लेना।।
बनेगा सुदृढ़ संगठन अब 'बिहारी'।
जगे शोषित का हुनर देख लेना।।[20]

ये कवि जातियां तोड़कर रोटी-बेटी एक करना चाहते थे। इनका सपना जाति और वर्ग-विहीन समाज का था। और इस समाज के निर्माण की आशा शोषक वर्ग से नहीं की जा सकती थी। इसी को लक्ष्य करके दलित कवि राम स्वरूप 'अमर' ने 'उठो शोषितों' ग़ज़ल लिखी–

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |
| Volume 3, Issue 4, April 2016 |

उठो शोषितों! क्यों पड़े सो रहे हो?
बहुत सो चुके, क्यों समय खो रहे हो?
तुम्हें जुल्म में आग अब है लगानी,
सदा से सताये हुए जो रहे हो।
इस आजादी में भी बने दास हो तुम?
गो राजा यहां के तुम्हीं तो रहे हो।
अमर शान से अब तो जीना तुम्हें है,
बढ़ाओ कदम क्यों शिथिल हो रहे हो।[21]
यह उर्दू शाइरी की ग़ज़ल नहीं है, वरन् लोक काव्य की ग़ज़ल है। लोक सांगीत और नौटंकी की किताबों में ऐसी बेशुमार ग़ज़लें लिखी गयी हैं। लोक काव्य में ये ग़ज़लें तब लिखी जाती थीं, जब जनता में जोश पैदा करना होता था। ऐसी ही एक जोशीली ग़ज़ल रमेशचंद्र मल्लाह ने लिखी थी, जिसमें हमें शोषक और शोषित के बीच आर-पार की लड़ाई का मंज़र मिलता है। यथा–
कब्जा है शोषकों का तलवार शोषकों की।
है मुल्क शोषकों का सरकार शोषकों की।।
सोता रहेगा कब तक, शोषितों का मुकद्दर।
कब तक रहेगी किस्मत बेदार शोषकों की।।
शोषित की झोंपड़ी तो मिट्टी में मिल रही है।
होती हैं कोठियां पर तैयार शोषकों की।।
जीने की इजाजत बस उसको फकत मिली है।
जिसने है की गुलामी दो-चार शोषकों की।।
जुल्मों सितम न चलता जग में सदा किसी का।
कम होगी शान शौकत, खूंखार शोषकों की।।
शोषित का खूं जो खौला, चुपके से चल पड़े हैं।
करने को आज कब्रें तैयार शोषकों की।।[22]
ये दलित चेतना के कवि थे, जो शोषकों का राज मिटाकर शोषितों का राज कायम करने का सपना बुन रहे थे। लेकिन मार्क्सवादी चेतना के पैरोकारों ने उनकी कद्र नहीं की। उनके यहां इन समाजवादी दलित-पिछड़े कवियों का कोई रिकार्ड नहीं मिलता। इसका मुख्य कारण यही था कि ये मौलिक समाजवादी चेतना से लैस दलित-पिछड़े कवि थे, जिसके एजेन्डे में ब्राह्मणवाद ही शोषित वर्ग का सबसे बड़ा शत्रु था। यह ब्राह्मणवाद ही जाति और धर्म के नाम पर दलितों-पिछड़ों और मजदूरों को एक नहीं होने दे रहा था। पर, दलित-पिछड़े कवियों को ऐसे छद्म समाजवादियों की जरूरत भी नहीं थी, जो उनकी दृष्टि में, ब्राह्मणवाद को ही पाल-पोस रहे थे। दलित कवि आशावादी थे। उन्हें पूरा विश्वास था कि एक दिन आयेगा, जब अछूत, शूद्र, मजदूर और किसान सब मिलकर शोषक राज का खात्मा करेंगे। रामशरण विद्यार्थी कहार ने अपनी कविता में कहा–
एका करके तुमको अपना संख्या बल दिखलाना है।
मिली हुई आजादी का अब, पूरा लाभ उठाना है।।
कांप उठे शोषक, दिल थरथर आज तुम्हारे तर्जन से।
जाग उठे सोई मानवता, आज तुम्हारे गर्जन से।।[23]
दलित-पिछड़े कवियों ने मार्क्सवादी और कांग्रेसी दोनों नेताओं की दलित हितैषी छवि को भी तोड़ा। उनके चेहरे से दलितों की हमदर्दी का नकाब उतारते हुए दलित कवि 'साथी' ने अपनी ग़ज़ल में लिखा—
अछूतों के हमदर्द बनते अगर हो।
छुआछूत का गढ़ ढहाओ तो जानें।।
तड़प करके शोषक से कहता है शोषित।
ये शोषण यहां से मिटाओ तो जानें।।[24]
गांधीवादी और मार्क्सवादी दोनों ही कवि मार्क्सवाद और गांधीवाद का मुखौटा लगाये हुए थे, भीतर से वे ब्राह्मण और ब्राह्मणवादी ही थे। इसलिये वे न छुआछूत का गढ़ ढा सकते थे और न शोषण को खत्म कर सकते थे। इसके विपरीत दलित-पिछड़े कवि दलित-पिछड़े जातियों से आये थे, उनके पास शोषण और जातीय दंश की गहन अनुभूतियां थीं और एक नया विमर्श था, जिसमें नयी सभ्यता और नयी संस्कृति का विजन था। दरअसल, यह दलित-बहुजन कविता ही 'नयी कविता' थी, वह नहीं, जिसे सवर्ण कवियों ने सत्तर के दशक में घोषित किया था। दलित-पिछड़े कवियों ने बिना किसी लाग-लपेट के स्वयं को दलित-शोषित का कवि घोषित किया। वीर सिंह 'चंद्र' की यह कविता देखिए–
मैं कवि हूं शोषित जनता का, गिरि पर खड़ा पुकार रहा हूं।
मैं कवि हूं दलितों-पतितों का, कटु ध्वनि से हुंकार रहा हूं।।
उन कवियों से परिचित हूं मैं, जिन्हें स्वार्थ ने था ललचाया।
जिस-जिसने अपनी प्रतिभा से, चाटुकारिता को अपनाया।।

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 3, Issue 4, April 2016 |

तप ही तो करता था शंबूक, क्या लेता उस रामचंद्र का।
जिसका गौरव वाल्मीक ने, अतिशय रंजित स्वर में गाया।।
मैं कवि हूं शोषित जनता का, सभी रहस्य बिदार रहा हूं।
मैं कवि हूं दलितों-पतितों का...
जिसने गिने एक श्रेणी में ढोल, गंवार, शूद्र, पशु नारी।
कौन प्रेरणा थी वह अंधी, जिसने तुलसी की मति मारी।।
मैं कहता हूं आज देश में, जो विष-भरा प्रचार करें यह,
राष्ट्र-भक्ति की दंड-नीति से, वे सब ताड़न के अधिकारी।।
मैं कवि हूं शोषित जनता का, उनका भाग्य सुधार रहा हूं।
मैं कवि हूं दलितों-पतितों का...
तुम अपनी सभ्यता बनाते, उन्हीं पुलिंदों के बल पर तो।
उसी सभ्यता पर इतराते, उन्हीं पुलिंदों के बल पर तो।।
हमको रहे असभ्य बताते, उन्हीं पुलिंदों के बल पर तो।
अपने अवगुण रहे छिपाते, उन्हीं पुलिंदों के बल पर तो।।
मैं कवि हूं शोषित जनता का, उनमें भर अंगार रहा हूं।
मैं कवि हूं दलितों-पतितों का[25]...

यह लंबी कविता है, जिसमें सात 'बंद' और 44 पंक्तियां हैं। इसमें दलित-बहुजन कवि ने दलित-शोषितों के उत्थान के प्रति जहां अपनी प्रतिबद्धता प्रकट की है, वहां शोषक श्रेणी के प्रपंचों और उनके प्रति मुख्यधारा के कवियों की उदासीनता को भी उजागर किया है। यहां कवि ने धर्मशास्त्रों को 'पुलिंदा' कहा है, और उनको जलाने के लिए वह शोषितों में अंगार भर रहा है। इस कविता के एक महत्वपूर्ण 'बंद' में समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व का उद्‌घोष किया गया है, जो डॉ. आंबेडकर का क्रांतिकारी नारा था। यथा–

बांध न सकें धर्म-मर्यादा, अब ये पोथी पत्रे तेरे।
नवयुग ने उस धर्म विहग के, फाड़-फाड़ सब पंख बिखेरे।
साम्य-धर्म, स्वतन्त्र-धर्म, बन्धुत्व-धर्म है आज विश्व का,
उन सपनों को भूल, अरे! अब उखड़ गये उस छल के डेरे।।
मैं कवि हूं शोषित जनता का, सबका भला विचार रहा हूं।
मैं कवि हूं दलितों-पतितों का ...[26]

दलित-पिछड़े वर्ग के कवि अपने लक्ष्य में गंभीर थे। वे आर-पार की लड़ाई लड़ रहे थे और इसके लिये वे ब्राह्मणवाद के सांस्कृतिक जाल को सबसे पहले काटकर फेंकना चाहते थे। वे ब्राह्मण-शूद्र को नहीं, वरन् 'मनुष्य' को स्थापित करना चाहते थे। इसी युग के एक अन्य बहुजन कवि सत्यमित्र विद्यालंकर ने ब्राह्मण को 'आदमी' बनने की सलाह दी–

ऋषियों के बंशज वे, जो अपने को 'भूसुर' कहते हैं,
आज आदमी कहला लें, अथवा जीना-मरना छोड़ें।[27]

आगे उन्होंने ब्राह्मण के ब्राह्मणत्व का खंडन करते हुए कहा–

गये 'शील गुण हीन विप्र' की पूजा से तरने वाले।
रहे नहीं अब 'विप्र द्रोह पावक' से डरने वाले।।
जपा करें वे आज 'ब्राह्मणोमुखमासीत' पहर आठो,
पर, इन भोंडे मंत्रों की हम कद्र नहीं करने वाले।
जिनकी काया में अब तक शोषण का रक्त समाया है,
वे ऋषि पुत्र, हमारी छाया छूने से डरना छोड़ें।
घास समझकर चरने वाले, अब हमको चरना छोड़ें।।[28]

इन दलित-पिछड़े कवियों ने सिर्फ भारत के अछूतों की ही बात नहीं की, वरन् उन्होंने विश्व भर के शोषितों के लिये आवाज बुलंद की। एक अन्य कवि नन्दकिशोर न्यायी ने लिखा–

अरे हरिजनों, अरे गिरजनों, अरे बहुजनों, अरे किसानों।
अमरीका के अरे नीग्रो, पिछड़े मुसलमान, क्रिस्तानों।।
अरे, एशिया के नवयुवकों, अफ्रीकन और हिन्दुस्तानी।
अधिकारों के लिये मर मिटो, अधिक न चलने दो मनमानी।।
शोषित-वंचित अब न रहेंगे, यही हमारा नारा है।
उठो गरीबों, उठो बहुजनों, यह संसार तुम्हारा है।।[29]

आगे कवि ने साम्यवाद का मार्ग प्रशस्त करते हुए लिखा–

व्यक्तिवाद का निकल रहा जग से अरे, आज दिवाला।
फैल रहा है, साम्यवाद का अद्‌भुत इक नया उजाला।।

चरमर-चरमर टूट रहा है, इस समाज का सड़ियल ढांचा।
पूंजीपतियों के मुंह पड़ रहा आज चहुं ओर तमाचा।।
उत्तर से दक्षिण के ध्रुव तक, अब गरीब का राज बनेगा।
फिर से नयी बसेगी दुनिया, फिर से नया समाज बनेगा।।[30]
आगे कवि शोषक श्रेणी को चेतावनी देता है–
आज हैं लाखों ही एकलव्य, आज हैं लाखों ही शंबूक।
उलट देंगे ये तख्ता आज, उठी है स्वाभिमान की हूक।।
गिरेंगे ये मन्दिर के कलश, मिटेंगे ये पाखंड विधान।
नहीं सह सकता दलित समाज, अरे ये सदियों का अपमान।।
ढहेंगे मन्दिर के अवशेष, मिटेंगे ब्रह्मा-विष्णु-सुरेश।
नाम ले जिनका जपते रहे, धर्म पर देते रहे कलेश।।
डुबा दो सागर में यह धर्म, बनाता जो मानव को श्वान।
मिटा दो उस संस्कृति के चिन्ह, न रह पायें किंचन भी प्राण।।[31]
इस दौर के दलित-पिछड़े कवियों का विजन बहुत स्पष्ट था। वे धर्म की अफीम खिलाकर जनता को सुलाना नहीं चाहते थे, वरन् उसका भौतिक विकास चाहते थे। वे जानते थे शोषित वर्ग अपने अधिकारों के प्रति जागरूक न हो जाय, इसीलिये शोषक और शासक वर्ग उन पर अत्याचार करता है। दलित-पिछड़े कवि इसी नवजागरण के विप्लवी कवि थे। इनमें लखनऊ के बदलूराम 'रसिक' महत्वपूर्ण कवि हुए हैं, जिन्होंने ब्राह्मणवाद और पूंजीवाद के खिलाफ अपनी ओजपूर्ण कविताओं से दलित चेतना को नयी धार दी थी। 'न अब जुल्म जालिम, चलेगा तुम्हारा', उनकी सबसे प्रसिद्ध कविता है–
लुभाकर, भुलाकर, रुला करके मारा।
न अब जुल्म जालिम, चलेगा तुम्हारा।।
यह कविता जोशपूर्ण ही नहीं, विचारपूर्ण भी है। यथा–
मुकद्दर से ही नीचे हमको बताकर।
धर्मरूप पाखंड हमको दिखाकर।
करें दान ब्राह्मण की पूजा कराकर।
लड़ाकर हमें तूने फितरत से मारा।
न अब जुल्म जालिम, चलेगा तुम्हारा।।
दिखा मनु का कानून बेरहम झूठा।
बहुत दिन तलक तूने बहुजन को लूटा।
नहीं कर्म धोखे का कोई भी छूटा।
नचाया बहुत गाड़ अधरम का खूंटा।
लहू चूसने का बनाया सहारा।
न अब जुल्म जालिम, चलेगा तुम्हारा।।[32]
बदलू राम रसिक की कविता में शोषक श्रेणी के सारे प्रपंचों को मिटाने की हुंकार थी। यथा–
उठो क्रांति के दूत बन आगे आओ।
बढ़ा पाप-संताप सारा मिटाओ।
सुदृढ़ संगठित शक्ति अपनी बनाओ।
'करो या मरो' पाठ सबको पढ़ाओ।
यही वक्त है, दो गुंजा अपना नारा।
न अब जुल्म जालिम, चलेगा तुम्हारा।।
मिटा दो जमाने से कुनबा-परस्ती।
मिटा दो लुटेरों के शोषण की हस्ती।
मिटा दो ये जातीयता वाली बस्ती।
मिटा दो गरीबों की फाका-परस्ती।
तभी तो 'रसिक' देश होगा हमारा।
न अब जुल्म जालिम, चलेगा तुम्हारा।।[33]
एक अन्य कविता में 'रसिक' शोषितों की नयी बस्ती बनाने की बात करते हैं। यथा–
मिटायेंगे शोषण की खूँखार हस्ती।
बसायेंगे शोषित नयी अपनी बस्ती।।[34]
'रसिक' की एक और कविता 'ढोंगियों का ढोंग' है, जिसमें वह ब्राह्मण-कर्म पर मारक प्रहार करते हैं। उनकी दृष्टि में व्यभिचार, जारकर्म, अधर्म, पाखण्ड, शोषण, विश्वासघात और आतंक ये सब ब्राह्मण के कर्म हैं। यथा–

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 3, Issue 4, April 2016 |

झूठ, छल, पाखंड, धोखा, धूर्तता, अधरम-धरम।
बेरहम बन जो, कुकरम कर्म करवाता रहा।।
तीर्थों में दिन को पंडा, रात को गुंडा बना।
कमालो अस्मत लूटने में, जो न थर्राता रहा।।
भक्तों से बनवाये मंदिर हरि-भजन के वास्ते।
कब्जा कर व्यभिचार-रत, उनमें जो इतराता रहा।।
कृष्ण-राधा नाम पर क्या राम नौटंकी बना।
लड़कों को औरत बना जो रोज नचवाता रहा।।
नरक से जाने का रास्ता स्वर्ग वैतरणी बता।
पांच पैसे तक की गाय पुजवाता रहा।।
विष्णु की छाती पै भृगु की लात का दिखला निशान।
अपने शापातंक से दुनिया को धमकाता रहा।।
खाया जिस पत्तल में, उसमें छेद जिसने कर दिया।
दक्षिणा लेकर उसी को शूद्र बतलाता रहा।।
अब मिटेगा वर्ण, वर्ग और छूत, शोषण, जात-पांत।
क्योंकि यह सदियों से लाखों जुल्म ही ढाता रहा।।
सिर्फ मानववाद ही है विश्वभर का धर्म एक।
बन 'रसिक' करले ग्रहण क्यों मन को भरमाता रहा।।[35]

निष्कर्ष

कहना न होगा कि इस दौर की दलित-बहुजन कविता ने समाजवाद को अपना लक्ष्य बनाया था। उसमें जातियों की संकीर्णता के विरुद्ध संपूर्ण शोषित वर्ग की मुक्ति की चिंता थी। उसने मानवीय गौरव की प्रतिष्ठा के साथ-साथ आम आदमी की मूलभूत आवश्यकताओं के लिये भी आवाज उठायी। वह नये समाज और नयी व्यवस्था के निर्माण के लिये शोषित जनता के जीवन में, वास्तव में, उफान लाना चाहती थी। जैसा कि, कवि जगन सिंह ने शोषित की आवाज को व्यक्त करते हुए कहा था–

मानव में मस्तिष्क सहित तन, हाथ, पांव, मुख, कान चाहिए।
मैं भी मानव हूं मुझको भी रोटी, बसन, मकान चाहिए।।[36]

आठवें दशक की दलित-बहुजन कविता का संघर्ष सामाजिक समानता और आर्थिक मुक्ति इन्हीं दो लक्ष्यों को पाने के लिये था। यह उसकी बहुजन चेतना की समाजवादी धारा थी। कहना न होगा कि इसी समय के दलित कवियों ने डॉ. आंबेडकर के आंदोलन को ठीक ढंग से समझा था।

प्रतिक्रिया दें संदर्भ

1) "Harsh lessons for BJP, for RSS too". Rediff.com. 2005-04-14. मूल से 4 मार्च 2015को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 2014-08-18.

2) ↑ "National : We are for Gandhian socialism, says Vajpayee". The Hindu. 2004-09-11. मूल से 8 जुलाई 2013 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 2014-08-18.

3) "बीजेपी के लिए कठोर सबक, आरएसएस के लिए भी" I Rediff.com I 14 अप्रैल 2005 I 18 अगस्त 2014 को लिया गया .

4) ^ "राष्ट्रीय: हम गांधीवादी समाजवाद के पक्ष में हैं, वाजपेयी कहते हैं" I द हिंदू I 11 सितंबर 2004I 27 सितंबर 2004 को मूल से संग्रहीत I 18 अगस्त 2014 को लिया गया .

5) ^ कोशल और कोशल 1973ए , पृ. 191.

6) ^ कोशल और कोशल 1973ए , पृ. 197.

7) ^ मजूमदार, बिमानबिहारी (सितंबर 1969)I "गांधी और समाजवाद"I भारतीय साहित्य . **12** (3): 10-11. जेएसटीओआर 23329173 I

8) ^ प्रधान 1980 , पृ. 97.

9) **^** रोमेन रोलैंड (1924)। महात्मा गांधी: वह व्यक्ति जो सार्वभौमिक अस्तित्व के साथ एक हो गया। सेंचुरी कंपनी. पी। 26. आईएसबीएन 9780824004989.

10) **^** राव, वीकेआरकेवी (दिसंबर 1970)। "पश्चिमी समाजवाद का गांधीवादी विकल्प"। भारत त्रैमासिक। **26** (4): 331-332. डीओआई : 10.1177/097492847002600401 । जेएसटीओआर 45069630 । एस2सीआईडी 153248034 ।

11) **^** कोशल और कोशल 1973ए , पृ. 192.

12) **^** प्रधान 1980 , पृ. 170.

13) **^** कोशल और कोशल 1973बी , पृ. 313.

14) **^** कोशल और कोशल 1973बी , पृ. 315.

15) वही,1973
16) वही, पृष्ठ 1
17) शोषित-पुकार, पृष्ठ 7
18) बहुजन-हुंकार, पृष्ठ 7
19) शोषित-पुकार, पृष्ठ 8-9
20) वही, पृष्ठ 8
21) वही, पृष्ठ 3
22) वही, पृष्ठ 14
23) वही, पृष्ठ 16
24) वही
25) बहुजन-हुंकार, पृष्ठ 3-4
26) वही, पृष्ठ 4
27) वही, पृष्ठ 5
28) वही, पृष्ठ 6
29) वही, पृष्ठ 13
30) वही, पृष्ठ 13-14
31) वही, पृष्ठ 15
32) वही, पृष्ठ 7-8
33) वही, पृष्ठ 9
34) वही
35) वही, पृष्ठ 11-12
36) वही, पृष्ठ 16